P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-6* ISSUE-8* (Part-2) April- 2019
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

सूफ़ी संगीत एवं शास्त्रीय संगीत का अंतर्सम्बंध

सारांश

सूफ़ी और शास्त्रीय संगीत का आपस में बहुत गहरा सम्बन्ध है। भारतीय शास्त्रीय संगीत में सूफ़ी संगीत का मिश्रण होने साथ भारतीय संगीत में और भी विस्तार हुआ। जब मुस्लिम शासक 11वीं शताब्दी में पहली बार भारत आए, तब से भारतीय संगीत में परिवर्तन आना शुरू हुआ। इन कलाकारों ने नवीन शैलियों को खोजा और भारतीय संगीत में नई चीज़ों का समावेश किया। इस प्रकार दो विभिन्न संस्कृतियों का सुमेल हुआ और भारतीय संगीत परम्परा और साहित्य में उर्दू, अरबी, फारसी, तुर्की और पश्चिम के शब्दों एवं धुनों का समावेश हुआ। इस प्रकार आज भी सूफ़ी संगीत में भारतीय शास्त्रीय संगीत की झलक बड़े स्पष्ट रूप से देखने को मिलती है। भारतीय शास्त्रीय संगीत आज भी अपनी विलक्षण पहचान रखता है और इसमें कलात्मिक तौर पर कुछ विशेषताओं के विस्तार में सूफ़ी संगीत का ख़ास योगदान है। इन दोनों पर आज के प्रचलित संगीत के संदर्भ में विचार चर्चा करना बहुत ज़रूरी है।

चरनजीत कौर
सहायक प्राध्यापक,
संगीत विभाग,
रामगढ़िया गरलज कॉलेज,
लुधियाना, पंजाब, भारत

मुख्य शब्दः सूफ़ी संगीत, शास्त्रीय संगीत, शैली, भारतीय संगीत, संस्कृति।

प्रस्तावना

प्राचीन काल से ही भारत विदेशी आक्रमणकारियों के आकर्षण का केंद्र रहा। जब मुस्लिम शासकों ने भारत आकर अपने साम्राज्य की स्थापना की तो उनका प्रभाव भारतीय संस्कृति पर भी पडा। भारत में विशेष तौर पर पंजाब इनका मुख्य केंद्र बना। मुसलमान शासकों के आगमन के साथ ही भारत में सूफियों का आगमन हुआ। इस्लाम में संगीत को आध्यात्मिक उपलब्धियों का बाधक माना जाता था जिस कारण शासकों ने आम जनता में संगीत पर प्रतिबंध लगा दिया था। परन्तु पवित्र ग्रंथ 'कुरान शरीफ़' में इस विषय में कुछ नहीं लिखा गया। "सूफ़ी पंथ जो इस्लाम धर्म का एक महत्वपूर्ण अंग था, धार्मिक गतिविधियों में संगीत पर प्रतिबंध के विरुद्ध था, क्योंकि सूफ़ियों की अपनी एक सोच होती है।"[1] सूफ़ीवाद एक मानसिक प्रवृत्ति होती है, जो कि परमात्मा की तरफ आकर्षित रहती है। सूफ़ी संगीत का पक्ष लेते हैं। वे संगीत को ईश्वरोपासना का माध्यम मानते हैं।

आरंभ से ही सूफ़ी संगीत में शास्त्रीय संगीत के तत्व नज़र आते हैं। सूफ़ी और शास्त्रीय संगीत का गहरा सम्बन्ध है। अनेकों विद्वानों का मानना है कि ख्याल गायन शैली का उद्भव भी सूफियों की कव्वाली से हुआ। सूफ़ी संगीत को समझने के लिए इसके इतिहास पर दृष्टिपात करना बहुत ज़रूरी है।

अध्ययन का उद्देश्य

इस खोज पत्र का उद्देश्य पाठकों को भारत में सूफ़ी संगीत के महत्व के विषय में जानकार करवाना है। इस खोज पत्र में सूफ़ी संगीत और सूफ़ीवाद के अहम् पहलुओं को दृष्टिगोचर किया गया है और साथ ही सूफ़ी संगीत की विभिन्न शैलियों जो कि आम जन में बेहद लोकप्रिय हैं, के बारे जानकारी दी गई है।

सूफ़ी शब्द की उत्पत्ति और सिद्धांत

"सूफ़ी शब्द का प्रयोग सबसे पहले हज़रत मुहम्मद साहब के गुज़र जाने से लगभग दो सौ साल बाद नौवीं शताब्दी के मध्य में बसरा के लेखक 'जाहज' ने किया था।"[2]

'Encyclopedia of Religion and Ethics' के अनुसार सूफ़ी शब्द की उत्पत्ति 'सफा' शब्द से मानी गई है। कई विद्वानों का मत है कि मदीने में मुहम्मद साहब द्वारा बनाई गई मस्जिद के बाहर 'चटाई' भाव चबूतरे पर जिन गृहहीन व्यक्तियों ने आ कर शरण ली थी और जो पवित्र जीवन मूल्यों और नियमों का पालन करते थे, वे सूफ़ी कहलाए।

कुछ विद्वानों ने इसकी उत्पत्ति ग्रीक शब्द' सूफ़िया' भाव ज्ञान से मानी है। "अबनस–अल–सर्राज़ ने 'किताब–उल–नुमा' में इस शब्द के विषय में

लिखा है कि मूल रूप में सूफ़ी शब्द अरबी के 'सूफ़' शब्द से उत्पन्न होता है। इसका अर्थ ऊन है।"[3]

उनका कहना है कि ऊन का व्यवहार संत, साधक और पैग़म्बर करते आए हैं। वास्तव में सूफ़ी विचारधारा साधू चिंतकों की विचारधारा थी, जो आम तौर पर ऊनी वस्त्र का ही प्रयोग करते थे। सूफ़ी वे लोग थे जिनमें परमात्मा के ज्ञान का प्रकाश हो चुका था।

"In sufism, all duality is melted into unity in the fires of introspection. Beauty leads to love and love to bliss. The sufis search for absolute beauty, absolute love and absolute bliss"[4]

सूफ़ी संप्रदायों की संख्या 175 तक मानी जाती है। 'आइने– अकबरी' में अबुल फ़ज़ल ने प्रमुख 14 संप्रदायों का वर्णन किया है।

भारतीय शास्त्रीय संगीत एवं सूफ़ी परंपरा

जब भारत में सूफियों का आगमन हुआ तो उन्होंने यहां आकर अपने धार्मिक संगीत का भी प्रचार किया। अनेक हिन्दू व मुसलमान शासक भी सूफ़ी सन्तों को एवं उनके संगीत को सदैव आदर की दृष्टि से देखते थे। पृथ्वी राज चौहान, खिलजी, राव, तुग़लक वंश के शासक मुग़ल सम्राटों के वंशज इन सूफ़ी संतों को पीर पैगम्बर मानकर उनकी मज़ारों पर शीश नवाते थे एवं उनकी परंपरागत गायकी सुनते थे। ''दो बिलकुल विभिन्न संस्कृतियों के मिश्रण की कोशिश करने में सूफियों का बहुत बड़ा योगदान है।''[5] सूफ़ी संगीत की महफिलों में धार्मिक प्रवचनों के साथ–साथ धार्मिक संगीत एवं कभी–कभी शास्त्रीय संगीत का व्यवहार भी होता था। सूफ़ी संतों के अलावा अमीर खुसरो, मियां तानसेन और उनके वंशज एवं शर्की खानदान के ऐसे महान कलाकार एवं कलावन्त हुए हैं जिन्होंने अनेकों राग–रागिनिओं और उनकी परम्पराओं का नवीनीकरण किया और अनेक वाद्ययन्त्रों की खोज एवं सुधार कार्य किए।

इन्होंने हिन्दुस्तानी पौराणिक चरित्रों में राम और कृष्ण की लीलाओं, उत्सवों एवं प्रसंगों का वर्णन मुस्लिम संस्कृति के प्रतीक दरबारों में भी किया। इन्होंने भारतीय परम्परा के अनुसार सूफ़ी संगीत एवं सूफ़ी दर्शन का सृजन किया। भारत में प्रचलित संगीत परम्परा से अनेकों नवीन शैलियां सूफियों ने अपनाईं।

अनेक सूफ़ी संत एवं संगीतकार भारतीय संगीत को समझते थे। सूफ़ी संतों, विशेष रूप से चिश्ती फकीरों का संगीत प्रेम खास तौर पर ज़िक्र करने योग्य है। सूफ़ी चिश्ती–परंपरा के प्रवर्तक ख्वाजा मोउनुद्दीन चिश्ती थे जिन्होंने इसकी स्थापना 1120 ई. में की थी। हिन्दु और मुस्लिम, दोनों वर्ग इनका समान रूप से सम्मान करते थे। अजमेर के राजा, पृथ्वी राज चौहान के मुख्य पुजारी रामदेव भी इनको अपना धार्मिक गुरू मानकर इनके शिष्य बन गए। इनकी शिष्य परम्परा में बाबा फरीद इस सम्प्रदाय के मुख्य नेता थे। इनके प्रमुख शिष्य निज़ामुदीन औलिया थे और दूसरे शिष्य थे–हज़रत अमीर खुसरो।

सोफ़ी परंपराएं, प्रमुख सूफ़ी संत एवं गायक

मध्यकाल में सोफिया की मूल रूप में चार परम्पराएँ थी :

1. चिश्ती परंपरा 2. कादरी परंपरा 3. नक्शबंदी परंपरा 4. सुहारवर्दी परंपरा।

इनमें से मुख्य रूप में चिश्ती परम्परा एवं सुहारवर्दी परम्पराएँ ही ज़्यादा प्रचार में थीं। चिश्ती परंपरा के प्रसिद्ध सूफ़ी संत हज़रत मुइनुदीन चिश्ती, बाबा फरीद, सलीम चिश्ती, निज़ामुदीन औलिया आदि थे और सुहारवर्दी परम्परा के प्रमुख शेख बहाउदीन ज़करीआ थे। चिश्ती परम्परा ने भारतीय संगीत को जो रागिनियां दी, उनमें 'पूर्वी' निज़ामुदीन को खासतौर पर पसंद थी। शेख निज़ामुदीन चिश्ती की दरगाह पर आज भी खुसरो रचित अनेकों गीत और कव्वालियां गाई जाती हैं जिनमें पूर्णरूप से भारतीयता की झलक मिलती है। सूफ़ी परम्परा के प्रचारक और प्रसारक संत निज़ामुदीन औलिया और अमीर खुसरो के अलावा संत बुल्लेशाह, शेख फरीद, संत यारी साहेब आदि अनेकों संत हुए जिन्होंने संगीत को माध्यम बनाकर सूफ़ी परम्परा का प्रचार–प्रसार किया।''[6]

''अमीर खुसरो ने कव्वाली, नकश, गुल, तराना, ठुमरी आदि गीत प्रकारों की रचना की। ध्रुपद पद्धति से निराली ख्याल शैली का निर्माण खुसरो का एक बड़ा कार्य है।''[7]

अमीर खुसरो उस समय के एक प्रतिभावान व्यक्ति थे जो जन्म से भारतीय थे एवं उन्हें भारतीय संस्कृति पर गर्व था। उन्हें भारतीय एवं ईरानी संगीत के शास्त्र एवं संगीत का पूर्ण ज्ञान था। खुसरो ईरानी रागों को भारत में प्रचलित करना चाहते थे और भारतीय रागों को मुस्लमानों में। उन्होंने ब्रज भाषा का प्रयोग मुस्लिम साहित्य में करके सूफ़ी संगीत को ऊँचा किया और अपनी काव्य रचनाओं में हिन्दी या हिन्द भाषा का प्रयोग किया जो सूफ़ी जगत में अत्यन्त लोकप्रिय हुआ।

''हिन्दु मुस्लिम एकता के लिए उन्होंने संगीत सिखाने की एक नवीन शैली को जन्म दिया जिसमें भारतीय एवं ईरानी रागों का वर्गीकरण एक ही ढंग से हो सके। राग वर्गीकरण की समान पद्धति का सेहरा भी अमीर खुसरो को ही है। कालांतर में यही पद्धति दक्षिण में मेलकर्ता पद्धति एवं उत्तर में थाट पद्धति कहलाई।''[8]

भारतीय संगीत और 12 स्वरों की कल्पना ईरानी के 12 स्वरों की तरह करना भी सूफ़ी परंपरा का एक और प्रभाव माना जा सकता है। इसके लिए पं. व्यंकटमुखि ने सात शुद्ध एवं पाँच विकृत स्वर माने। पर जिन विद्वानों ने 12 से ज़्यादा स्वर माने उन्होंनें भी राग वर्गीकरण के समय 12 स्वरों का ही प्रयोग किया था और स–प को अचल माना। भारतीय सप्तक में भी स–प को अचल माना गया है। मध्यकाल में ग्राम–मूर्च्छना पद्धति विलुप्त हो गई थी, जो स्पष्ट रूप से भारतीय संगीत पर सूफ़ी परंपरा, ईरानी और अरबी संगीत का प्रभाव था। ''अमीर खुसरो ने ईरानी, अरबी और भारतीय रागों एवं तालों के आधार पर जो नए राग और ताल बनाए, उनमें से कई का प्रयोग आज भी संगीतकारों द्वारा किया जाता है जिनमें झीलफ, सनम, सरपरदा, साज़गिरी, मबाफिक, डॅशाक, मुज़ीर या मुज़ीब, ग़नम, फरगाना, ईमन, जगला आदि राग है और तालों के नाम इस प्रकार है : पश्तों, सूल्फाखता, जत, फरोदस्त, सवारी, जनानी सवारी, दास्तान, चम्पक, झूमरा, कव्वाली ठेका, धमाल, चौताला या चार ताल, पहलवान ताल इत्यादि।''[9]

अमीर खुसरो ने भारतीय विद्वानों को 12 स्वरों वाली 'मुकाम पद्धति' से परिचित करवाया और भारतीय ग्रंथों की विचारधारा को मुकाम पद्धति की ओर मोड़ दिया। उन्होंने मुकाम पद्धति से रागों का वर्गीकरण किया। आजकल 'मुकाम' से भाव राग संस्थान, मेल या थाट के समानार्थक शब्द के रूप में लिया जाता है। मध्यकालीन संगीत ग्रंथों में इसका वर्णन किया गया है। लोचन, अहोबल, रामामात्य, पुण्डरीक विट्ठल एवं सोमनाथ ने इसकी व्याख्या की है। यह बात अत्यन्त महत्वपूर्ण है कि चाहे थाटवादी पं. भातखण्डे जी हो या मेलवादी पं. व्यंक्टमुखि, सारे ही खुसरो के अनुयायी हैं।

सूफियों के प्रभाव से भारतीय संगीत दो धाराओं उत्तरी संगीत (हिन्दुस्तानी संगीत) एवं दक्षिणी संगीत (कर्नाटकी संगीत) में बंट गया। अरबी और भारतीय संगीत का मिश्रण करके संगीत को एक नया रूप दिया गया। ख्याल, तराना, टप्पा, ठुमरी, ग़ज़ल, कव्वाली आदि इसी के उदाहरण है, जबकि दक्षिण में ये क्रांतिकारी परिवर्तन नहीं पहुँच सके।

सूफ़ी संगीत की प्रमुख गायन शैलियों का शास्त्रीय पक्ष

1. कव्वाली

सूफ़ी संगीत की गायन शौलियों में कव्वाली एक प्रमुख गायन शैली है। भारत में मुस्लिम शासकों के आगमन के साथ सूफ़ी संत भी इस्लाम धर्म के प्रचार हेतु आए जिन्होंने सूफ़ी दर्शन और सूफ़ी सिद्धांतों का प्रचार किया और वे भारतीय बन कर ही रहे। उन सूफ़ी संतों की याद में अनेक दरगाहें बनाई गई जहाँ मुसलमान और भारतीय लोग, अपनी मुरादें लेकर जाते थे। ये दरगाहें धार्मिक स्थलों के रूप में प्रतिष्ठित हुई। इन सूफ़ी संतों की धार्मिक भावनाओं और सिद्धांतों के काव्यात्मक रूप ने कव्वाली के जन्म दिया।

सूफ़ी मत के अनुसार, 'कल्ब' आत्मा की वह स्थिति है, जो बुद्धि से संबंधित है और आत्मा और सांस के दरमियान स्थित है। 'कल्ब' के प्रति समर्पित सूफियों और पीरों ने 'कौल' को जन्म दिया। हिन्दी कोष के अनुसार कौल का शाब्दिक अर्थ मकूल, इकरार, कथन, वचन, प्रतिज्ञा या वादा करना होता है। कौल को गाने वाले कव्वाल कहलाए। कौल को गाए जाने के द्वारा कव्वाली का जन्म हुआ। इस प्रकार कव्वाल में 'ई' उपसर्ग लगाकर 'कव्वाली' शब्द की उत्पत्ति हुई।

कव्वाली शब्द पर हिन्दी दृष्टिकोण से विचार करते हुए इसकी व्युत्पत्ति 'काक+अली' शब्दों के मेल से हुई मानी जाती है। ''काकली' का अर्थ होता है, कौओं का झुण्ड। अनुमान लगाया जाता है कि पक्षियों में कौआ बहुत ही वाचाल होता है। इस प्रकार मानव समाज का वह झुण्ड जो बड़ा ही वाचाल हो, वह कव्वाल कहलाया।

''कव्वाली के आयोजन को 'समाज' कहा जाता है, जिसका अर्थ है, सुनना या जिक्र करना। जिस स्थान पर इसे आयोजित किया जाता हे, उसे 'समाखाना' कहा जाता है।''[10]

''कव्वाली की परम्परा के संदर्भ में अनेकों सूफ़ी संतों के नामों का उल्लेख मिलता है। इनमें अजमेर के ख्वाज़ा हज़रत मुईनुदीन चिश्ती का नाम सर्वोपरि है।''[11] उनके काल में कव्वाली गायन की छन्द रचना फारसी में होती रही थी। ऐसा भी कहा जाता है कि तेहरवीं शताब्दी के प्रसिद्ध सूफ़ी संत हज़रत निज़ामुदीन औलिया के साहित्य एवं संगीत प्रेमी शिष्य अमीर खुसरो ने ही कव्वाली को नया मोड़ दिया और उनका नाम कव्वाली के अविष्कारक के रूप में लिया जाता है। इस विषय में विद्वानों के विभिन्न मत हैं।

''श्री रशीद अहमद कहते हैं, कव्वाली और तराना दोनों हज़रत खुसरो की चीज़ें हैं और भारत के इतिहास में भी हमें ऐसे प्रमाण मिलते हैं जिनके आधार पर हम कव्वाली के अविष्कारक अमीर खुसरों को नहीं कह सकते।

कव्वाली को केवल मुसलमान ही नहीं बल्कि हिन्दू भी पूर्ण रागदारी, लयकारी, शेयरो–शायरी और दोहों को मिला कर प्रस्तुत करते हैं। ''कव्वालों की गायन शैली में गाई जाने वाली गज़लें। गायन रूप में कव्वाली कहलाती हैं। कव्वाली में तान, पलटा, जमज़मा, बोल बांट इत्यादि सब कुछ होता है।''[13]

शास्त्रीय संगीत की दृष्टि से देखा जाए तो भिन्न–भिन्न रागों में गाई जाने वाली कव्वाली ने धीरे–धीरे जनसाधारण को रागों से परिचित करवाया। कव्वाली में बोलबांट, बोल बनाव, लयकारी आदि चमत्कारिक रूप से प्रयुक्त होते हैं। एक परम्परागत कव्वाली है जो आज भी दरगाह अजमेर शरीफ में प्रचलित है–

''ख्वाजा मुईनुदीन मैं तोपे वारी,
आन पड़ी हूं दरवजवा पै तोरे,
हो जाए, पूरी मेरी मनशा सारी।
कोई किसी का है, कोई किसी का,
मैं तो कहती हूँ ख्वाजा तिहारी।''

एक और कव्वाली अमीर खुसरो द्वारा संत निज़ामुदीन औलिया को समर्पित है, जो भिन्न–भिन्न रागों और तालों में गाई जाती है–

''बहुत कठिन है, डगर पनघर की,
जो कोई जात, वही जात भटकी,
घर से जो निकसी पनियां भरन को,
कैसे भर लाऊँ मदवा से मटकी।''

'मदन–उल–मूसिकी' नामक ग्रंथ में मुहम्मद ईमाम ने गायकों के दो वर्ग किए हैं, एक कलावंत, जो आलाप, ध्रुपद, ध्रमार और सादरा गाते हैं, दूसरे 'कव्वाल', जो ख्याल, कौल, तराना आदि गाते हैं।''[14]

पहले कव्वाली केवल ढप्प के साथ गाई जाती थी, बाद में ढोलक पर भी गाई जाने लगी। कव्वाली के साथ कभी–कभी रबाब भी बजाया जाता है। 5–6 दशकों में कव्वाली के साथ हारमोनियम का प्रयोग भी होने लगा है।

''कव्वाली अक्सर सूफियों की दरगाहों, समाखानों में होती है और वहाँ कव्वाली गाने के लिए कव्वाली की चौंकियां नियुक्त होती हैं। अजमेर शरीफ, देहली, महरौली, बरेली, कलियार, शरीफ, गुलवर्मा आदि ऐसे स्थान हैं, जहां परम्परागत रूप से कव्वाली गाई जाती है।''[15]

कव्वाली गायन में भारतीय रागों, तालों एवं वाद्यों का प्रयोग होता है, जिससे इसमें शास्त्रीयता की भरपूर झलक देखने को मिलती है। कव्वाली गाने वाले कव्वाल प्रशिक्षित गायक होते हैं एवं पुश्तैनी पदवी के अधिकर्ता

होते हैं।

'काफ़ी'

पंजाब के सूफ़ी संगीत में काफी गायन एक लोकप्रिय गायन शैली हैं। काफी शैली में शेख फरीद, बुल्ले शाह, शाह हुसैन आदि की रचनाएँ देखने को मिलती हैं जिनमें प्रेम तत्व प्रबल होता है। साधारणतः इनमें रांझा, महींवाल, पुन्नुं आदि नामों को प्रेमी हृदय का प्रतीक मानकर काफी गीत लिखे गए हैं। यह प्रेम सांसारिक न होकर आध्यात्मिक होता है।

अर्बी और फारसी भाषा में काफी शब्द 'कवाफी' शब्द के रूप में मिलता है जो काफीआ का बहुवचन है। काफीआ का अर्थ 'तुक' होता है जिसे अंग्रेजी भाषा में 'Rhyme' कहते हैं।

कुछ विद्वानों के अनुसार काफी शब्द अरबी भाषा के शब्द 'कैफ' से बना है जिसका अर्थ आनंद, मस्ती, मतवालापन आदि भावों को व्यक्त करता है।

सूफ़ी साहित्य के इतिहास में 'शाह हुसैन' ऐसे पहले सूफ़ी हुए हैं जिन्होंने काफियों की रचना की। उल्लेखयोग्य है कि गुरू नानक देव जी द्वारा रचित काफियां श्री गुरू ग्रंथ साहेब जी में संकलित हैं। गुरू जी की काफियां राग आसा, सूही और मारू में रचित हैं। सूफ़ी काफियों में मुख्यतः प्रेम एवं विरह का चित्रण मिलता हैं यह प्रेम ईश्वर एवं मुरशद दोनों से संबंधित है। उदाहरणतः शाह हुसैन की केदार राग में लिखित काफीः

''माए नी मैं कीहनूं आखां
दरद विछोडे दा हाल।। रहाउ।।
जंगल जंगला फिरां ढूंढेदी,
रांझण रांझण फिरां मैं कहिंदी,
रांइण मेरे नाल वे, नी मैं कीहनूं आखां।''

शाह हुसैन के बाद शाह सरफ, शाह हबीब, शाह मुराद, बुल्ले शाह, गुलाम फरीद आदि कवियों ने सूफ़ी काफी की रचना की। ये सारे कवि बहुत अच्छे गायक भी थे एवं शास्त्रीय संगीत का भी इनको भरपूर ज्ञान था। इनके द्वारा रचित काफिकरागों में गाई जाती हैं। बुल्ले शाह ने जो रागों के अंतर्गत काफियां लिखी हैं, उनमें से कुछ एक ने नाम इस प्रकार हैंः झिंझोटी, केदार, भैरव, विभास, प्रभाती, धनाश्री, जैजेवन्ती, तिलंग, सिंदूरा आदि।

कहीं–कहीं काफ़ियों में राग एवं ताल दोनों का संकेत मिलता है, जैसे–राग भैरव, ताल पक्का (एक ताल)।

काफी भावप्रधान है एवं खास गायन शैली है। काफी गायक अपने कंठ की सूक्षम हरकतों जैसे कि – मुर्की, खटके, कण, गमक आदि के माध्यम से अपने गायन को सजाता है और यह उसकी कल्पना शक्ति पर निर्भर करता है कि वह अपने गायन को कितना सुन्दर एवं प्रभावपूर्ण बना पाता है।

काफियां दो प्रकार की हैं – सिंधी काफी एवं मुल्तानी काफी। इन दोनों को सिन्ध भैरवी राग में एवं इसके अलावा भीमपलासी, भैरव, भैरवी, गूजरी तोड़ी, बिलासखानी तोडी आदि रागों में गाया जाता है।

काफी गायन शैली में मुख रूप से कहरवा और रपक तालों का प्रयोग किया जाता है। आजकल कभी–कभी यह दादरा ताल में भी सुनने को मिलती है।

'कौल'

कौल का असल नाम 'कोलहू है। इसमें कुरान शरीफ की कोई आयत या 'हदीस नवी' होती हैं। इसमें अरबी शब्दों के साथ–साथ कुछ टुकड़े तराने के बोलों के भी होते हैं। इसके स्थाई और अंतरा दो भाग होते हैं। ''कौल अरबी भाषा का शब्द है जिसका अर्थ है – कथन, वचन, बात, प्रवचन, प्रतिज्ञा आदि।''[16]

कौल गाते हुए पवित्रता को बरकरार रखना होता है। इसीलिए इसमें गंभीर रागों के टुकड़े लगाए जाते हैं।

'कल्बना'

कल्बना को असल में 'कल्बहू' कहा जाता है। इसका गायन अरबी और हिन्दी शब्दों को मिलाकर बनता है। इसमें कई तालें शामिल होती हैं एवं हर टुकड़े के साथ ताल बदल जाती है। कई विद्वान इसे ताल सागर भी कहते हैं। यह आजकल प्रचार में कम है।

'नक्श और गुल'

इसमें फारसी के शब्द होते हैं। ये गाने बहार के मौसम में गाए जाते हैं। इसमें स्थाई–अंतरा और एक ही ताल का प्रयोग होता है।

'रंग'

सूफ़ीयाना कलाम की कोई महफिल, समाज या कव्वाली ऐसी नहीं होगी, जहां रंग न गाया जाए। इसके स्थाई और अंतरा दो भाग होते हैं और इसे किसी राग में गाया जाता है।

'धमाल'

जब सूफ़ी खड़े होकर एक दूसरे का हाथ पकड़ कर एक गोल घेरा बना कर नृत्य करते हैं और सबके पैर कव्वाल के गाने के वज़न पर उठते हैं तो उस गाने के साथ तबले या ढोलक पर ताल बजाई जाती है। उस ताल को भी धमाल ही कहते हैं। अमीर खुसरो ने ऐसे गाने, ताल एवं नृत्य का नाम धमाल रखा है।

इसके अलावा नक्श निगार, बसीत, मण्डहा आदि भी ऐसी सूफ़ी शैलियां हैं जिनमें शास्त्रीयता के अंश दृष्टिगोचर होते हैं।

शास्त्रीय संगीत की प्रमुख गायन शैलियों में सूफ़ी संगीत की झलक

शास्त्रीय एवं सूफ़ी संगीत का आपस में गहरा संबंध है। ये दोनों ही एक दूसरे में से निकलते है। इसी कारण भारतीय संगीत में नईं–नईं गायन शैलियों का जन्म हुआ। इसका प्रमुख कारण यह है कि जब भारत में मुसलमानों का आगमन हुआ तो उन्होंने यहां आकर अपने संगीत का प्रचार–प्रसार किया एवं यहां के संगीत को समझने की कोशिश की। इस प्रयास में दो अलग–अलग जगह के संगीत आपस में मिले और नए–नए प्रयोग हुए। इसकी एक उदाहरण ख्याल शैली का विकसित होना है। जिसके अविष्कारक अमीर खुसरो को माना जाता हैं। आज शास्त्रीय संगीत में सूफ़ी संगीत की झलक साफ तौर पर देखने को मिलती है। ख्याल शैली में भी सूफियाना बंदिशों का गायन किया जाता हैं उदाहरण के तौर पर राग सूहा की बंदिश–

''तू है मोहम्मद शाह दरबार निज़ामुदीन सुजानी।''

तराना गायकी में भी सूफ़ी संगीत की झलक

मिलती है। इसमें 'खली' शब्द आता है जिसका अर्थ होता है – या इलाही और यला (अल्लाह)।

ठुमरी गायकी की सूफ़ी दर्शन से प्रभावित प्रतीत होती हैं। ठुमरी श्रृंगार रस प्रधान होती है और मध्यकाल से ही इसका संबंध नृत्य के साथ रहा है। जिस प्रकार जीवात्मा परमात्मा के वियोग में व्याकुल होती है, उसी प्रकार राधा कृष्ण की विरह व्यथा का चित्रण ठुमरी में मिलता है। अनेकों ऐसी ठुमरियों के उदाहरण मिलते हैं, जिनमें सूफ़ियों की नायका (भक्त), नायक (ईश्वर) को मिलने के लिए व्याकुल नज़र आती है, जैसेः

'बाबुल मोरा नैहर घूटो जाए।'

'सईयां बिना घर सूना–सूना।'

वर्तमान समय में सूफ़ी संगीत

समय बदलने के साथ सूफ़ी संगीत में भी काफी परिवर्तन देखने को मिलता है। सूफ़ी संगीत की मुख्य गायन शैली कव्वाली है, जिसने आधुनिक काल में सबसे अधिक लोकप्रियता हासिल की हैं। पहले कव्वाली में ऊँचे स्वर और सीधी तानें होती थीं पर वर्तमान समय में पदों के टुकड़ों को लेकर ठुमरी की तरह बोल–बनाव करने, छोटी–छोटी तानों को मुर्की और खटकों के साथ सजाया जाता है। आजकल कव्वाली में भी शास्त्रीय रागों का आधार लेकर तान, आलाप और बोल–बनाव से गायन की बढ़त की जाती है।

आज भी फतेहपुर सीकरी में शेख मुईनुदीन चिश्ती की मज़ार मौजूद है जहाँ सारे धर्मों के अनुयायी श्रद्धापूर्वक उनके दर्शनों के लिए जाते हैं। उरस के मौके पर साल में दो बार वहाँ कव्वालियों की महिफिलें सजती हैं जहां भारत और पाकिस्तान के बड़े–बड़े कव्वाल अपनी हाज़री देते हैं और सूफ़ीयाना नातिया कलाम पेश करते हैं। आजकल के युवा कलाकार सूफ़ी गायकी के प्रति काफी रूचि लेने लगे हैं। आमतौर पर कलाकार गाने के साथ–साथ चेहरे के हाव–भाव, आंखों और हाथों के इशारों और भाव प्रदर्शन के प्रति विशेष ध्यान देने लगे हैं। आजकल स्त्रियां भी सूफ़ी गाने लगी हैं। वर्तमान काल के सूफ़ी गायकों में स्व. उस्ताद नुसरत फतेह अली खां, राहत अली खां, आबिदा परवीन, स्व. बरकत सिद्धू, वडाली बंधू, सतिंदर सरताज, कंवर गरेवाल, नूरां बहनों के नाम उल्लेखनीय हैं।

निष्कर्ष

इस प्रकार जब मुस्लिम शासक 11वीं शताब्दी में पहली बार भारत आए, तब से भारतीय संगीत में परिवर्तन आना शुरू हुआ। इन कलाकारों ने नवीन शैलियों को खोजा और भारतीय संगीत में नई चीज़ों का समावेश किया। इस प्रकार दो विभिन्न संस्कृतियों का सुमेल हुआ और भारतीय संगीत परम्परा और साहित्य में उर्दू, अरबी, फारसी, तुर्की और पश्चिम के शब्दों एवं धुनों का समावेश हुआ। इस प्रकार आज भी सूफ़ी संगीत में भारतीय शास्त्रीय संगीत की झलक बड़े स्पष्ट रूप से देखने को मिलती है। यह कहना अतिश्योक्ति नहीं होगी कि सूफ़ी संगीत का आधार सदैव से ही शास्त्रीय संगीत रहा है और दोनों एक–दूसरे के पूरक हैं।

अंत टिप्पणी

1. *एम. एल. राय चौधरी, म्यूज़िक इन इस्लाम, पन्ना 88.*
2. *डा. असद अली, भक्तिकालीन हिन्दी साहित्य पर मुस्लिम संस्कृति का प्रभाव, पृष्ठ 43.*
3. *धार्मिक परंपराएं और हिंदुस्तानी संगीत, रेनू सचदेव, पृष्ठ 100*
4. *Dr. K. S. Rangaswami, Indian mysticism, page 104.*
5. *डा. मृदुला पुरी, संगीत मीमांसा, पृष्ठ 116.*
6. *अशोक कुमार, संगीत और संवाद, पृष्ठ 247*
7. *अरविन्द पारिख, संगीत कला विहार, जुलाई 1957, पृष्ठ 9*
8. *आचार्य बृहस्पति, ध्रुपद और उसका विकास, पृष्ठ 80*
9. *डा. मृदुला पुरी, संगीत मीमांसा, पृष्ठ 123*
10. *डॉ. सुधा सहगल, उर्दू भाषा की प्रमुख सांगीतिक काव्य शैलियां, संगीत, दिसंबर, 2003, पृष्ठ 14*
11. *डॉ. गीता पैंतल, पंजाब की संगीत परंपरा, पृष्ठ 19*
12. *आचार्य वृहस्पति, संगीत चिंतामणि, पृष्ठ 78*
13. *आचार्य बृहस्पति, संगीत चिंतामणि, पृष्ठ 31*
14. *गुलाम रसूल, कव्वालीः एक अध्ययन, संगीत, कव्वाली अंक, पृष्ठ 53*
15. *आचार्य वृहस्पति, मुसलमान और भारतीय संगीत, पृष्ठ 33*
16. *आचार्य वृहस्पति, मुसलमान और भारतीय संगीत, पृष्ठ 33*